साहित्य, समाज तथा सत्ता का अंतर्संबंध और महुआ माजी का उपन्यास

- प्रो. गणेश बी. पवार

"किसी कहानी को अच्छी कहने के पीछे न जाने कितने कारण होते हैं। कभी-कभी केवल एक निहायत छोटी-सी बात के लिए भी किसी कहानी को अच्छी कहते सुना गया है - चाहे वह एक चित्र हो, या एक वाक्य। और कहने वालों में अच्छे भले लोग मिलते हैं–यहाँ तक कि साहित्य-समीक्षक और कहानिकार भी। अब इस पसंद को क्या कहा जायगा? चार बातें इसके खिलाफ़ कही जा सकती हैं तो एक -दो बात इसके समर्थन में भी पेश की जा सकती हैं। सुन्दरता का निर्णय भी क्या सिर्फ एक-आध चीज़ को लेकर ही नहीं किया जाता? या तमाम चीज़ों की एक-एक कर नाप कर ली जाती है? अगर यह प्रवृत्ति एकांगी है तो जो लोग केवल विषय-वस्तु या कलाकौशल के लिए किसी कहानी को अच्छी कहने हैं, वे भी क्या एकांगी नहीं हैं? यदि कुछ तथाकथित 'अच्छी कहानियों' के अच्छे होने की जाँच की जाय तो पता चलेगा कि ये भी शायद एक ही दो बातों के लिए अच्छी कही गई हैं।"[1] कहानी और 'अच्छी कहानी' की बात करते हुए नामवर जी की यह बात विचार करने योग्य है। किसी भी कहानी या उपन्यास को भला-बुरा कहने के कई कारण हो सकते हैं। किन्तु एक-आध बिन्दुओं के आधार पर किसी साहित्यिक रचना के खिलाफ़ कहा जा रहा है तो फिर एक-आध बिन्दुओं के आधार पर उसके समर्थन में कहना कैसे एकांगी माना जाना चाहिए? साहित्यिक तत्वों के साथ-साथ सामाजिक जरूरतों को छूने वाला साहित्य की परख करने में चूक तभी होती है, जब आलोचना पूर्वाग्रह से पीढ़ीत होती है। किसी रचना की कथा-वस्तु तो किसी रचना की कलात्मकता तथा किसी की सामाजिक महत्व उसे 'अच्छी रचना' बनाती है। आप कबीर में कलात्मकता तथा केशव में सहृदयता खोजेंगे तो आपको निराश ही होना होगा। कबीर का सामाजिक पक्ष मजबूत है तो केशव का कलात्मक पक्ष। दोनों की साहित्यिक रूचि तथा रचनात्म प्रेरणा उन्हें अलग बनाती है।

सचेत साहित्यकार हमेशा समाज एवं सत्ता का अंतर्संबंध खोजने की कोशिश करता रहता है। इसी के चलते नए - नए अनुसंधानों के माध्यम से नई - पुरानी विषयों का रचनात्मक प्रस्तुति करता रहता है। हिन्दी एवं अन्य भाषाओं में भी मध्यकालीन भारतीय इतिहास और

[1] . कहानी नयी कहानी - नामवर सिंह, पृ.सं - 134

स्वतंत्रता आंदोलन पर कई शोधपरक उपन्यास, नाटक आदि की रचनाएँ हुई है। "ऐतिहासिक उपन्यास हो या इतिहास की सामग्रियों पर आधारित कोई साहित्यिक विधा, सभी को यह सत्य पाना ही होता है कि इतिहास वर्तमान के लिए ही है। साहित्यकार सर्जक है, जीवन का सर्जन करना ही उसका लक्ष्य होता है। वह इतिहासकार की भाँति तमाम बीती बातों को उनकी अनेक स्थूल रंग-लेखाओं में पुन: प्रस्तुत नहीं करता। वह सर्जक के गहन दायित्व को समझकर उन्हें एक गहरे मानवीय सत्य से जोड़ता है।"[2] महुआ माजी के उपन्यासों में भी इन्हीं मानवीय भावनाओं की खोज दिखाई देती है। देश-काल और सीमाओं की हदों से दूर उनके उपन्यास, अनंत जीजिविषा की खोज तलाश करती दिखाई देती है। अशोक कुमार पाण्डेय द्वारा लिखित 'कश्मीरनामा' जीस तरह इतिहास,समाज और राजनीति के आईने में कश्मीर समस्या की पड़ताल करता है ठीक उसी तरह महुआ माजी का उपन्यास भाषाई राजनीति का ज्यलंत चित्रण प्रस्तुत करता है। महुआ माजी द्वारा लिखित 'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास भाषा की अस्मिता बचाने की दृष्ठि से लिखा गया हिन्दी का पहला उपन्यास ही नहीं बल्कि एक सफल प्रयास भी मानी जानी चाहिए। आए दिन साहित्य में कृति के प्रकाशन के दूसरे-तीसरे दिन ही समीक्षा लिख दी जाती है। यह आज के साहित्यकारों का सौभाग्य ही कहिए कि कुछ साहित्यकारों को जीवन पर्यन्त साहित्य की सेवा करने के बावजूद उन्हें उपेक्षा ही मिली है! ऐसे साहित्कारों की पर्याप्त संख्या हिन्दी साहित्य में मिलती है। किन्तु किसी लेखक या कृति की लोकप्रियता को साहित्य में उसकी सफतला/सार्थकता या श्रेष्टता मान लेनी चाहिए? नहीं, बिल्कुल नहीं मानी जा सकती जबतक उसकी 'सार्थक' पहचान न हो और तब तक उस साहित्य एवं साहित्यकार के प्रति भी सच्ची इमानदारी नहीं होगी। 2006 में 'राजकमल प्रकाशन' द्वारा प्रकाशित महुआ माजी का उपन्यास 'मैं बोरिशाइल्ला' (बांग्लादेश के अभ्युदय की महागाथा) के सन्दर्भ में भी यह बात ठीक बैठती है। इस उपन्यास को अनेक पुरस्कार भी मिले हैं कारण इसमें संदेह नहीं कि यह एक बहुआयामी उपन्यास है। किन्तु पुरस्कार तथा चयन कमेटी क्या आज संशय से मुक्त है ? हमारे यहाँ इसका एक अलग ही समाजशास्त्र सुनने में आता है।

कुछ दिनों पहले श्री.श्रवण कुमार गोस्वामी ने महुआ माजी पर यह आरोप लगाते हुए 'विवाद' जन्म दिया था कि 'मैं बोरिशाइल्ला' उपन्यास की लेखिका महुआ माजी नहीं हैं बल्कि उन्हें उनके किसी परिवार के सदस्य ने आधे-अधूरे रुप में इस उपन्यास की पांडुलिपि दी थी

[2] .हिन्दी उपन्यास : एक अनर्यात्रा - रामदरश मिश्र, पृ.सं.189

जिसे महुआ माजी ने मात्र पूरा किया। कारण 'मैं बोरिशाइल्ला' की लेखिका महुआ माजी न होकर कोई और है। इस विवाद में श्रवण कुमार गोस्वामी ने आत्माभिव्यक्ति को आधार बनाया और वैयक्तिक भावावेश में आरोप लगाया था। इस विवाद पर कई लेखक-लेखिकाओं ने लिखा तथा 'पाखी' पत्रिका ने 'श्रवण कुमार-महुआ माजी प्रकरण' नामक अलग से सभी लेखों का एक साथ में प्रकाशित कर इसे और हवा दी। साहित्य जगत में ऐसे आरोप-प्रत्यारोप हर दौर में लगाए गए हैं। "आरोप उस दौर में भी लगाए जाते थे, आज भी लगाए जाते हैं पर तब पहले तथ्य-निरुपण और तर्क/कुतर्क प्रस्तुत करने के बाद आरोप लगाए जाते थे, आज आरंभ आरोप से होता है और तर्क/कुतर्क तक जुटाने की जरुरत नहीं समझी जाती, क्योंकि आरोप ही दूसरे सभी काम कर देता है।"[3]श्रवण कुमार गोस्वामी का महुआ माजी पर लगाया गया आरोप भी कुछ इसी प्रकार का प्रतीत होता है। तथ्यों से अधिक वैयक्तिक भावावेग में आत्मग्रस्त से व्यक्त आरोप। साहित्य-जगत में आरोप हो या आलोचना, वैयक्तिकता से मुक्त नैतिकता की अपेक्षा रखती है। यदि ऐसा नहीं हो पाता तो वह स्वयं मात्र 'विवाद' तक ही सीमित रह जाती है। महुआ माजी पर लगा आरोप का भी यही हुआ है। यदि श्रवण कुमार गोस्वामी जी आरोप को वैयक्तिक भावनाओं के इर्द-गिर्द न घुमाके उसे साहित्यिक बहस या व्यापक साहित्यिक सरोकारों के रुप में अभिव्यक्ति का हिस्सा बनाते तो निर्विवाद रुप से पाठक भी इससे लाभान्वितहोते और इसे मात्र 'विवाद'या 'आत्मग्रस्त' कहकर नहीं टाला जाता। खैर, छोड़िए इस विषय पर ज़्यादा बात करना भी विवाद को हवा देने समान ही होगा।

उपन्यास में कई दृश्य हैं जो पश्चिमी एवं पूर्वी पाकिस्तान की सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं के साथ-साथ सांस्कृतिक विरासत की संवेदनात्मक तर्क के साथ व्यक्त हुआ है।किस प्रकार देश विदेश नीतियों के माध्यम से इतर देशों को अनुकूल तथा अनानुकूल पहुँचाते हैं इस पर उपन्यास के पात्र बोलते दिखते हैं। उपन्यास बंगालियों के साथ बार-बार हुए विभाजन की त्रासदी,सांप्रदायिक हिंसा,विस्थापन की समस्याओं के अलावा एक और महत्वपूर्ण बिन्दु की ओर हिन्दी साहित्य का ध्यान आकर्षित कराता है, जो आज तक किसी हिन्दी उपन्यान का केन्द्र नहीं बना है। वह यह कि बंगालियों का मात्र भाषा प्रेम। जो कि व्यापक स्तर पर भाषा की अस्मिता के प्रश्न से जुड़ा है। उपन्यास में आंदोलन का आरंभ इसी कारण होता है, जब पश्चिमी पाकिस्तान की शासन व्यवस्था जबरन बांग्ला भाषा को हटा कर उसकी जगह उर्दू को पश्चिमी

[3] .हिन्दी आलोचना का विकास - मधुरेश पृ.सं. 183

तथा पूर्वी पाकिस्तान की राष्ट्र भाषा घोषित करती है। यहीं से आरंभ होकर यह आंदोलन धीरे-धीरे मुक्ति-संग्राम का रुप लेकर और एक बार फिर विभाजित होते हुए स्वतंत्र बांग्लादेश का रुप लेती है।उपन्यास के 'अ' से आशछे तेड़े, भीतर उतरते वसंत का साक्षात्कार, उतर आई शरत् ऋतु ग्राम-बांग्ला में, एक बंगालिर दुर्ग पूजा आदि ऐसे भाग हैं जो बंग-भूमि के नदी-नाले,पहाड़ आदि प्राकृतिक वातावरण का चित्रण करते हुए बंग-भूमि की गरिमा व्यक्त करती है। बीच-बीच में बांग्ला में व्यक्त लोकगीतों से उपन्यास सुपूर्ण बांग्लामय बन जाता हैं साथ ही भाषा प्रेम भी साफ झलकती है। यह बांगाल की लोक संस्कृति की अभिव्यक्ति है, जिसके बगैर बंग-भूमि का चित्रण अधूरा है। उपन्यास का दूसरा भाग यानी बेसिक डेमोक्रेसी, अज्ञातवास के वे दिन, तांड़व, कर्म क्षेत्रे-कुरुक्षेत्रे, नरक दर्शन, यातना झेलते बुजुर्ग आदि युद्ध का चित्रण कराती है। साथ में अपनों से ही लड़ने की महाभारत कथा का याद अवश्य दिला जाती है। जो विजयोपरांत भी आत्मा को कोसती रहती है और फिर भी परिस्थिति में अंतर नहीं आ पाती। उपन्यास के अन्त में लेखिका उपन्यास का मुख्य पात्र केष्टो घोष से कहलाती है" बचपन में करीब बारह साल की उम्र में सड़क पर खड़े-खड़े अपने घर को जलते हुए देखा था मैंने। आज करीब बासठ साल की वृद्धावस्था में सड़क पर पड़े-पड़े घर को, इंसानों को, इंसानियत को जलते हुए देख रहा था मैं। देख रहा था और धार्मिक उन्माद की उस आँच से झुलसते हुए सोच रहा था कि क्या यहलड़ाई वाकई धर्म की लड़ाई है ? क्या यह उन्माद सिर्फ धर्म के लिए है ? यदि ऐसा होता तो धर्म के नाम पर भारत से अलग होने के बाद पाकिस्तान के दोनों हिस्सों में अवश्य ही गहरा रिश्ता होता। प्यार का रिश्ता होता। दोनों हिस्सों के समानधर्मी भाइयों के बीच इतिहास का यह क्रूर अध्याय न लिखा गया होता !"[4] ऊपर उपन्यास के पंक्ति में 'खड़े-खड़े' तथा 'पड़े-पड़े' संकेतो की ओर ध्यान दे तो स्थिति की वास्तविकता समझ में आए बिना नहीं रहेगी कि किस तरह परिस्थिति बद से बदतर की ओर जा रही थी और जा रही है।

एक देश के लिए भाषा का महत्व किस हद तक है या होना चाहिए इसका बहुत मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। यह मात्र इतिहास की एक घटना को उठाकर लिखा गया उपन्यास नहीं बल्कि इतिहास की पुनर्व्याख्या भी है, जो अधिक व्यापक विचारधारा के स्तर पर व्यक्त हुआ है। ऐतिहासिकघटनाओं का मात्र व्यवस्थित निरुपण न करते हुए घटनाओं को पात्रों की संवेदनाओं के साथ जोड़ना किसी भी साहित्य की विशेषता हो सकती है। मनुष्य की संवेदना

[4].मैं बोरिशाइल्ला – महुआ माजी पृ.399

के साथ जुड़कर ही ऐतिहासिक घटनाएँ और भी मार्मिक और हृदयस्पर्शी बन पाती हैं। साथ में उपन्यास में चित्रित मुक्तियोद्धाओं का प्रशिक्षण, उन्हें मिलने वाली अल्प सुविधाएँ और दूसरी तरफ पश्चिमी पाकिस्तानी सैन्य में मौजूद सभी आधुनिक युद्ध उपकरणों का चित्रण संकेत रुप में ही सहीकिन्तु बहुत दूर तक दृष्टि आकर्षित करने को बाध्य करती है। कलाकार जितना कला को छिपाता है उतना ही उसमें निखार आती है। साहित्कार की इन संकेतों के माध्यम से अभिव्यक्त अभिप्राय तक पाठक तभी पहुँच सकता है जब वह पूर्वाग्रह मुक्त होकर साहित्य में भीगे। "कबीर हो या कोई और कवि-उन्हें ' इतिहास की अदालत' में अपने मुकदमे के गवाह के तौर पर बरतने भर से कविता के प्रति संवेदनहीनता तो प्रकट होती ही है, इतिहास- लेखन की अपनी भी हानि होती है। सामाजिक सत्तातंत्र और समाज की गतिशीलता के दैनंदिन जीवन-व्यवहार के उन संकेतों को 'पढ़ना'चाहिए जो कबीर,तुलसी और मीरा जैसे रचनाकार अपनी रचना में छोड़ गए हैं। इतिहास-लेखन के अन्य स्त्रोतों से इनकी तुलना करके हम इन कवियों के बारे में ही नहीं उनके देशकाल के बारे में कहीं ज़्यादा प्रामाणिक निष्कर्षों तक पहुँच सकते हैं।"[5]

बंगालियों का भाषा प्रेम देखते ही बनता है। इनमें भारतीय सामासिक संस्कृति की साफ झलक दिखाई देती है। उसे पश्चिमी पाकिस्तानियों व्दारा नाश होते देख पूर्वी पाकिस्तानी यानी आज के बांग्लादेशी सहन नहीं कर पाते हैं। क्योंकि, भाषा किसी भी देश की सांस्कृतिक संपत्ति होती है। इसका मिटना मतलब संस्कृति का मिटना या कहें स्वत: अपनी अस्मिता का मिट जाना भी है। आज दुनिया की अनेक भाषाएँ इन्ही कारणों से मिट गई हैं और कई भाषाएँ मिटने की कगार पर हैं। यही कारण है कि दुनिया भर में भाषा बचाओ आभियान जोरों पर है। इसी संदर्भ में दैनिक भास्कर में गंगा सहाय मीणा आदिवासी भाषा को बचाने की ऐतिहासिक जरुरत पर जोर देते हुए कहते है कि "सवाल यह भी है कि लुप्त हो रही भाषाओं को बचाया जाना क्यों जरुरी है ? हर भाषा का एक बहुत गहरा सामाजिक और सांस्कृतिक सन्दर्भ होता है। अगर हम गौर करेंगे तो पाएंगे कि जो भाषाएं हाल में लुप्त हुई हैं या लुप्त होने के कगार पर हैं, उनके बोलने वाले समुदाय भी लुप्त हो रहे हैं। हाल में लुप्त अहोम, आंद्रो, रंगकस, सेंगमई और तोलचा भाषा का संबंध जिन आदिवासी समुदायों से है, वे या तो स्वयं लुप्तप्राय हैं या उनकी स्थिति इतनी खराब है कि अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए उन्हें अपनी सांस्कृतिक विरासत को

[5] .अकथ कहानी प्रेम की कबीर की कविता और उनका समय – पुरुषोत्तम अग्रवाल पृ. 28

छोड़ना पड़ा है।"[6] क्या आज यह संकट मात्र आदिवासी भाषाओं केसंदर्भ में ही है ? नहीं, भारत ही नहीं विश्व की अनेक भाषाओं पर यह संकट गहराता जा रहा है। ऐसे में 'मैं बोरिशाइल्ला' की प्रासंगिकता स्वयं प्रकाशमान है।

आज के समय में जब कि आदिवासी को आदिवासी साहित्य, दलित को दलित साहित्य तथा स्त्री को स्त्री साहित्य लिखने की वकालत की जा रही है तो दूसरी ओर विश्वविद्दालय स्तर पर आदिवासी विद्यार्थी आदिवासी साहित्य में ,दलित विद्यार्थी दलित साहित्य में आदि अपने अपने विषय मानते हुए शोध विषय का चयन किया जाना गंभीर मानसिक बिमारी है। क्योंकि यह विद्यार्थी अपने इन विषयों के प्रति प्राथमिक जानकारी भी कम ही रखते हैं। ऐसी स्थिति में महुआ जी का यह उपन्यास ऐसी बिमारी से मुक्ति की राह में अहम कदम है। इसे मात्र स्त्री साहित्य मानते हुए उनके और अनेक पहलुओं से मुँह मोड़ना नासमझी होगी। साथ ही महुआ माजी का पहला उपन्यास होने मात्र से नकारना ठीक एक बार वही गलती होगी जो नामवर सिंह ने फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास के संदर्भ में किया था। जिसे वे स्वयं भी स्वीकार करते हैं। मैला आँचल के संदर्भ में ही शिवदान सिंह चौहान लिखते है कि "ऐसी स्थिति में 'मैला आचँल' को 'गोदान' के समान दूसरा महान उपन्यास स्वीकार करने का अर्थ यह भी निकलताहै कि तीस साल तक साहित्य-साधना करने के बाद प्रेमचन्द कला के जिस शिखर पर पहुँचे थे, 'रेणु' ने उस शिखर से ही अपनी सृजन-यात्रा का आंरभ किया या दूसरे शब्दों में, रेणु उतने ही प्रौढ़ और व्यापक विश्वबोध और रचनात्मक प्रतिभा का मूलधन लेकर साहित्य के क्षेत्र में उतरे, जितने गहरे और व्यापक विश्वबोध और प्रतिभा की उपलब्धि के लिए प्रेमचन्द को तीस साल तक रचना-प्रक्रिया की अनेक टेढ़ी-मेढ़ी और सँकरी गलियों में भटकना पड़ा।"[7] कहने का आशय यह है कि कोई भी साहित्य-सरोकार जब व्यापक सामाजिक संवेदना के साथ जुड़ जाता है तो उसका महत्व स्वयं सिद्ध है।

प्रोफ़ेसर गणेश बी. पवार,
हिंदी विभाग, भाषा एवं मानविकी संकाय,
कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कलबुरगी
Email: ganeshpawar@cuk.ac.in

[6] .दैनिक भास्कर राष्ट्रीय संस्करण नई दिल्ली,13 अगस्त 2013 पृ.13

[7] . परिपेत्क्ष को सहीं करते हुए---शिवदान सिंह चौहान पृ.299-300